जयपुरी-कलम का एक सचित्र विज्ञप्ति लेख

—श्री भंवरलाल नाहटा

जैन धर्म में गुरुओं को अपने नगर में चातुर्मास के हेतु आमन्त्रित करने में विज्ञप्ति-पत्र प्रेषण की प्रथा बड़ी ही महत्त्वपूर्ण रही है।[1] इसी प्रसंग से काव्य-कला व चित्र-कला को भी खूब प्रोत्साहन मिला। फलतः परिवर्तनशील जगत् के तत्कालीन नगरों, इमारतों, देवालयों, बगीचों तथा विशिष्ट व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी सुरक्षित रह गये। इनके माध्यम से हम अतीत के रीति-रिवाज, संस्कृति और रहन-सहन आदि सभी बातों का ज्ञान फिल्म की तरह चक्षुगोचर कर सकते हैं। इस प्रकार के विज्ञप्ति-पत्रों को चित्रित करने में चित्रकारों को महीनों का समय लगता था, तब जाकर सौ-सौ फीट लम्बे टिप्पणक विज्ञप्ति-पत्र बनते। तत्पश्चात् विद्वान् लोग अपनी काव्य-प्रतिभा की चमत्कार-पूर्ण अभिव्यक्ति किया करते, विज्ञप्ति-लेख लिख कर। ये विज्ञप्ति-लेख दो प्रकार के हुआ करते, एक तो मुनिराजों के क्षामणा पत्र, जिनमें चातुर्मास के समय धर्म-ध्यान की विविध प्रवृत्तियों व तीर्थयात्रा आदि का विशद वर्णन होता। दूसरे प्रकार के गुरुगुण-वर्णात्मक लेख रहता और श्रावक-संघ के द्वारा अपने नगर में पधारने का आ न्त्रण लिखा हुआ रहता, जिसमें प्रधान श्रावकों के हस्ताक्षर भी अवश्य रहते। सचित्र-विज्ञप्ति-पत्रों में दूसरे प्रकार के विविध चित्रमय ही अधिक मिलते हैं। ऐसे विज्ञप्ति-पत्रों का परिचय प्रकाशित करने से इतिहास के रिक्त पृष्ठों पर स्वर्ण-लेख आलोकित हो जाएगा। अतः यह चित्र-समृद्धि वाले पत्र जिनके भी पास या जानकारी में हो, उनका परिचय प्रकाशित करने का अनुरोध किया जाता है। उपलब्ध सचित्र-विज्ञप्ति-पत्रों में सबसे पहला पत्र जहांगीर कालीन विजयसेन सूरि का है। जैन सचित्र-विज्ञप्ति पत्रों के सम्बन्ध में बड़ोदा से प्राचीन विज्ञप्ति पत्र नामक सचित्र ग्रंथ भी प्रकाशित हो चुका है।

कलकता जैन समाज के अग्रगण्य धर्मिष्ठ श्रीयुत् स्व० सुरपतसिंह जी साहब दूगड के संग्रह में अजीमगंज से प्रेषित २०वीं शताब्दी का एक सचित्र-विज्ञप्ति-पत्र है जो मुनिराज श्री रत्नविजय जी की सेवा में ग्वालियर भेजा गया था। चित्रकला की दृष्टि से यह विज्ञप्ति-पत्र बड़ा सुन्दर और कला-पूर्ण है। इसमें एक विचित्रता तो यह है कि अजीमगंज से भेजा हुआ विज्ञप्ति-पत्र होते हुए भी उसमें इस स्थान का कोई नाम तक नहीं है। केवल सही करने वाले श्रावकों के नाम ही, इस स्थान का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि यह विज्ञप्ति पत्र बंगाल से मध्य प्रदेश—ग्वालियर—को भेजा गया था। इस विचित्रता का कारण यही मालूम देता है कि यह चित्रमय विज्ञप्ति-पत्र राजस्थान के कला-प्रधान सुरम्य नगर जयपुर से चित्रित करवाकर व लिखवाकर मंगवाया गया था, जिसे बिना किसी परिवर्तन व सम्वत् मिति लिखे, केवल श्रावकों की सहियां करके मुनिश्री को भेज दिया गया था। वह विज्ञप्ति-पत्र १९ फुट लम्बा व ११½ इंच चौड़ा है। इसका यहां संक्षिप्त परिचय कराया जाता है।

इस विज्ञप्ति-पत्र में सर्वप्रथम मंगलमय पूर्ण कलश का चित्र अंकित है जिसको पुष्पहार पहनाया हुआ है एवं ऊपर फूलों की टहनी लगी हुई है। दूसरा चित्र छत्र का है, जिसकी छाया में दो चामरधारी पुरुष व दो स्त्रियाँ हैं, जिनके हाथ में मयूर-पिच्छिकाएं हैं। तत्पश्चात् अष्ट मांगलिक के चित्र बने हुए हैं। फिर चतुर्दश-महास्वप्नों के नयनाभिराम चित्र हैं। सूर्य के चित्र में न मालूम किसके लिये व्याघ्र चित्रित किया गया है। इन महास्वप्नों की दर्शिका श्री त्रिशला माता लेटी हुई दिखलाई है। जिन माता के पलंग के निकट चार परिचारिकाएं खड़ी हुई हैं तथा एक सिरहाने की ओर बैठी हुई है। चित्रकार ने उद्यान के मध्य में सिद्धार्थ राजा का महल बनाया है। जयपुर के किसी सुन्दर महल से इसकी समता की जा सकती है। तन्दुपरान्त एक जिनालय का चित्र है, जिसमें मूलनायक श्री पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा विराजमान है, सभामंडप में सात श्रावक खड़े-खड़े प्रभु-दर्शन कर रहे हैं, तीन श्रावक पंचांग-नमस्कार द्वारा चैत्यवन्दना करते हुये दृष्टिगोचर होते हैं। एक श्रावक मंदिर जी की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ एवं दो व्यक्ति बाहर निकलते हुए

१. श्वेताम्बर जैन समाज में सांवत्सरिक पर्व के अवसर पर दूरवर्ती गुरुजनों को क्षमापत्र (खमापणा) भेजने की परिपाटी रही है। कालान्तर में किसी मुनि या आचार्य को चातुर्मास के लिए आमन्त्रित करने के लिए विज्ञप्ति-पत्र का उपयोग होने लगा। दिगम्बर जैन समाज में विज्ञप्ति पत्रों का प्रचलन नहीं है तथा मुनि एवं आचार्य को निमन्त्रित करने के लिए श्रावकगण श्रीफल भेंट करते हैं।

□ सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बतलाये हैं। यह जिनालय, एक सुन्दर वाटिका में है जो आम, केला, अशोक, झाऊ आदि के वृक्षों तथा श्वेत लाल रंग के पुष्पों-पौधों से सुशोभित है। मंदिर जी का मुख्यद्वार बड़ा विशाल व प्रतोलीद्वार दुमंजिला है, जिसकी इमारत में गवाक्षों के रंगे हुए कट कड़े, जाली तथा अविशिष्ट भाग श्वेत भूमिका पर सुनहरे काम के सुन्दर चित्र बने हुए हैं। प्रतोली का द्वार खुला हुआ और दूसरा द्वारा बन्द किया हुआ है। द्वार के आगे दाहिनी ओर चार व बायें तरफ आठ, कुल मिलाकर बारह संतरी पहरा दे रहे हैं। ये लोग नीले रंग की वर्दी पहिने व हाथ में संगीन लिये तैनात हैं, इसके बाद पाँच हाथियों के चित्र हैं जिनका सौन्दर्य व वस्त्राभरण दर्शनीय है, तीन हाथियों पर अम्बाडी व एक पर खुला हौदा प्रक्षरित है, जिस पर पताकाएं हैं। दूसरे पर बन्द पड़दे वाली जनानी-अम्बाडी है। तीसरे पर त्याघ मुखदण्ड माहे-मुरातब है, जो जयपुर का शाही सम्मान सूचक चिह्न है। सभी हाथियों पर महावत हैं पर एक पर दो व्यक्ति दूसरे भी बैठे हुए हैं। इस पर पंचवर्णी ध्वजा-पताका लहरा रही है। इस चित्र में दो व्यक्ति भूमि पर खड़े हुए हैं, जो प्रहरी मालूम देते हैं। इसके बाद अश्वमंडली का चित्र है, इनमें दो श्वेत और दो नीले रंग के घोड़े हैं, एक सवार बैठे हुए हैं और तीन घोड़ों की लगाम थामे खड़े हैं। एक सवार अपने आगे धारण किए हुए डंके पर चोट दे रहा है। दूसरे दोनों सवार छड़ीदार और पताका धारी मालूम होते हैं, चार ऊंटों की ओठी (सवार) बन्दूक धारण किये हुए हैं। कुल ६ ऊंट है। इसके बाद बड़े चित्र में सेना दिखाई है, इसमें अग्रगामी ६ व्यक्ति फौजी बैण्ड (वाजित्र) के १५ सैनिक हैं, जिनके ब्लू रंग की पोशाक पहनी हुई है। तदुपरान्त पालकी, रथ, ऊंट व घुड़सवार भी हैं। दो व्यक्ति पालकी के आगे व चार व्यक्ति रथ के आगे-आगे चल रहे हैं। एक रथ का केवल जोत दीखता है, उसके बैल आराम से बैठे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इसके बाद वाले चित्र में चार बाह्य-यंत्र-धारी खड़े हैं और दो नर्तकियाँ नृत्य कर रही हैं। इसकी पृष्ठ भूमि में वाटिका और एक कोठी है। आगे के चित्र में मुनिराज के स्वागतार्थ श्राविका संघ गज-गामिनी चाल से जाता हुआ बताया है, जिसकी अग्रेश्वरी श्राविका के मस्तक पर मंगल के लिए पूर्ण-कलश धारण किया हुआ है।

अब शहर की प्राचीर देखिये— इसका रंग गुलाबी है तथा प्रतोली द्वार की शुभ्र धवल मिती पर स्वर्णमय काम बड़ा ही रमणीक है। प्रतोली द्वार के मध्य में राजसी-वस्त्रों के ठाठ में एक प्रभावशाली व्यक्ति हाथ जोड़े खड़ा है। सामने मुनिराज अपनी शिष्य मंडली के साथ पधार रहे हैं। **श्री रत्न-विजय जी** महाराज के साथ ११ साधु हैं। ये सभी साधु पीतवस्त्रधारी हैं और रजोहरण और मुख-वस्त्रिका धारण किये हुए हैं। आश्चर्य यह है कि चित्रकार ने इनका चोलपटा भी श्वेत के स्थान में पीला बना दिया है। मुनि श्री के स्वागतार्थ श्रावक उपस्थित हैं। इसके बाद चित्र किसी कोठी का है, जो बगीचे के मध्य में है। मुनि श्री रत्न विजय जी यहां आकर तख्त पर विराजमान हुए हैं। उनके पीछे बड़ा-सा तकिया दिखाया है, जो चित्रकार की साध्वाचार अनभिज्ञता का द्योतक या यति-समाज में प्रचलित प्रथा के विपरीत है। मुनि श्री के समक्ष स्थापनाचार्य जी विराजमान हैं। श्रावक-श्राविकाओं ने स्वर्णमय बहुमूल्य मोती-माणक आदि जवाहरात के आभूषण तथा रेशमी व जरी के वस्त्र पहने हुए हैं। कोठी की छत पर चार कन्याओं के झांकते हुए मुख दिखाई देते हैं। इसके बाद मुनिश्री के पृष्ठ भाग में एक लघु शिष्य खड़ा है। चौक में १५ श्रावक व १४ श्राविकाएं दाहिने व बायें तरफ बैठे हुए व्याख्यान श्रवण कर रहे हैं। इसके बाद के चित्र में वाटिका के मध्यस्थ फर्श का एक भाग बताया है, जिस पर आठ व्यक्ति गाते-बजाते हुए बैठे हैं, जो गंधर्व लोग मालूम देते हैं, दो व्यक्ति खड़े हैं। अब अन्तिम चित्र १५$\frac{1}{2}$ इंच लम्बा व १०$\frac{1}{2}$ इंच चौड़ा जयपुर नगर का है जिसका संक्षिप्त परिचय कराया जाता है।

इस चित्र में जयपुर नगर की प्राचीर (परकोटा शहरपनाह) का भाग सामने दो तरफ का दिखलाया है। नगर के चार दरवाजे चांदपोल, सांगानेर दरवाजा, घाट दरवाजा आदि दिखाये हैं। चौरास्ते की तीन चौपड़ होने के कारण मकानों की श्रेणियां आठ भागों में विभक्त हो गई हैं। मकानों की इन श्रेणियों में गुलाबी, हरे, नीले व पीले रंग दो-दो दिखाये हैं। इस चित्र की सूक्ष्मता में चित्रकार ने कमाल कर दिखाया है। इतने छोटे चित्र में वृक्ष, नर-नारी, हाथी घोड़े, इक्के आदि से जयपुर का राजमार्ग बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। इसमें तीन चौपड़, सरगासूली (इसरलाट), जलमहल, सिरेड्योढी, त्रिपोल्या, जौहरी बाजार, हवामहल आदि इमारतें देखते ही खूब आसानी से पहिचानी जाती हैं। नगर का बाह्य भाग भी घनघोर जंगल के हरिताभ वातावरण से परिपूर्ण है। सांगानेरी दरवाजे के सामने वाले भाग में मंदिर, तम्बू, डेरा आदि भी दृष्टिगोचर होते हैं। सामने मोती डूंगरी रानी जी का महल आदि तथा नगर के पृष्ठ भाग में नाहरगढ़, जयगढ़ और आमेर महल आदि के पहाड़ी दृश्य बड़े ही मनोरम हैं। सबसे उच्चे भाग में दुर्ग के प्रोलि-प्राकार व परकोटा तथा दुर्ग के **वापिशीर्षक** दिखाई दे रहे हैं। गढ़ का गणेश, सूर्य मंदिर, गलता, मोहनवाड़ी आदि दर्शनीय स्थान, वाटिका व तालाब आदि का चित्रण करके चित्रकार ने जयपुरी चित्रकला का अच्छा परिचय दिया है।

चित्रों की समाप्ति के बाद विज्ञप्ति-लेख की बारी आती है, जिसकी प्रारंभिक पंक्तियां इस प्रकार है :

श्रीमत्पार्श्वे जिनेन्द्र-पाद-कमल-ध्यानेकतानाः सदा
श्रेष्ठ-ध्यान-युगेऽतिरक हृदयाः षट्-कायिका नेदया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवानांच विधायकाः निखिल सार्वज्ञागमाश्यासिनी,
व्याख्यानामृत वर्षणेन नितरां धर्मान्कुरोत्पादकाः ॥१॥
सत्सिद्धान्त विचार-दक्ष-मतयो दीनोदिघीर्षा युताः
पाखण्ड-दंभ दाहने अग्नि-सदृशा श्री-संघ-संपूजिताः···॥

उपर्युक्त लेख में यह विक्षप्ति, किस संवत मिती में, कहां से भेजा गया, निर्देश नहीं है पर श्रावकों की हस्ताक्षर नामावली से इसे अजीमगंज से भेजा गया निश्चित होता है। जिन प्रधान-श्रावकों के नाम इसमें हैं, उनके वंशज आज भी विद्यमान हैं। श्री सुरपत सिंह जी दूगड जिनके संग्रह में यह विज्ञप्ति लेख है, सर्व प्रथम सही करने वाले सुप्रसिद्ध लक्ष्मीपत सिंह धनपति सिंह आदि के वंशज हैं उनसे पूछने पर इस लेख का समय सं० १४३० के लगभग का विदित हुआ। लेख जिन्हें भेजा गया वे पन विजय जी अपने समय के क्रिया पात्र व प्रभावशाली जैन मुनि थे। हमारे संग्रह में उनके कतिपय पत्र विद्यमान हैं।

यह सचित्र विज्ञप्ति पत्र ऐसे विज्ञप्ति पत्रों का एक अन्तिम नमूना है। इसके बाद का कोई सचित्र-विज्ञप्ति-लेख हमारे अवलोकन में नहीं आया। लेख अधिक बड़ा न होने पर भी चित्रकला की दृष्टि से भी बड़ा ही मूल्यवान है। लेख से उस समय की भक्ति-भावना का चित्र-सा उपस्थित हो जाता है। जयपुर के दाधीच नानूलाल ने इस लेख का निर्माण किया। चित्रकार का नाम नहीं पाया जाता, पर यह किसी कुशल कलाकार की कृति है।

जयपुर के कुशल चित्रकार गणेश मुसव्वर के बनाये हुए सुन्दर चित्र कलकते के जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर में लगे हुए हैं, जो कि संवत् १९-२५ से १९-३५ के मध्य बने हुए हैं। इन चित्रों व सुप्रसिद्ध राय बद्रीदास जी के मंदिर के विशाल चित्रों का परिचय फिर कभी कराया जाएगा। जयपुर की चित्रकला का दूर-दूर तक कितना आदर था, यह कलकते के इन चित्रों से सुस्पष्ट है। जैन मंदिरों में चित्र करने के लिए जयपुर के चित्रकारों को कलकते तक में बुलाया जाता था।

श्रमण धर्म

ज्ञातृपुत्र महावीर को श्रमणधर्मा कहा गया है। प्राचीन भारतीय श्रमण धर्म की वास्तविक परम्परा जैसी महावीर के साधना-प्रधान धर्म में सुरक्षित पाई जाती है वैसी अन्यत्र नहीं। किन्तु इस श्रम का व्यापक अर्थ था। शरीर का श्रम श्रम है। बुद्धि का श्रम परिश्रम है। आत्मा का श्रम आश्रम है। एकतः श्रमः श्रमः। परितः श्रम. परिश्रमः। आ समन्तात् श्रमः आश्रमः। एक में जो शरीर मात्र से अधूरा या अवयव श्रम किया जाता है वह श्रम है। एक में जो कन और शरीर की सहयुक्त जक्ति से पूरा धर्म किया जाता है, वह परिश्रम है। और सबके प्रति चारों ओर प्रसृत होनेवाला जो श्रम भाव है वह आश्रम कहलाता है। ये तीन प्रकार के मानव होते हैं। केवल जो श्रमिक हैं, वे सीमित, जड़-भावापन्न, दुःखी और क्लान्त रहते हैं। जो अपने केन्द्र में जागरूक शरीर और प्रज्ञा से सतत प्रयत्नशील रहते हैं वे दूसरी उच्चतर कोटि के प्राणी हैं। वे सुखी होते हुए भी स्वार्थनिरत होते हैं। किन्तु तीसरी कोटि के उच्चतम प्राणी वे हैं जिनके मानस केन्द्र की रश्मियों का वितान समस्त विश्व में फैलता है और जिनका आत्मभाव सबके दुःख-सुख को अपना बना लेता है। ऐसे महानुभाव व्यक्ति ही सच्चे मानव हैं। वे ही विश्वमानव, महामानव या श्रेष्ठ मानव होते हैं। ऐसे ही उदार मानव सच्ची श्रमण-परम्परा के प्रतिनिधि और प्रवर्तक थे। वे किसी निजी स्वार्थ या सीमित स्वार्थ की प्राप्ति या भोगलिप्सा के लिये अरण्यवास नहीं करते थे, वह सुख स्वार्थ तो उन्हें गृहस्थ जीवन में भी प्राप्त हो सकता था। अनन्त सुख की संयम द्वारा उपलब्धि ही श्रमण जीवन का उद्देश्य था जिसमें समस्त सीमा-भाव विगलित हो जाते हैं। काश्यप महावीर द्वारा प्रवेदित धर्म एवं शाक्य-श्रमण गौतम द्वारा प्रवेदित धर्म दोनों इस लक्ष्य में एक सदृश हैं। दार्शनिक जटिलताओं को परे रखकर मानवता की कसौटी पर दोनों पूरे उतरते हैं।

☐ डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल
वैशाली-अभिनन्दन-ग्रन्थ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org